सामाजिक न्याय और शिक्षा

नरेन्द्र कुमार पाठक[1]
[1]**एकेडिमिक काउन्सलर, इग्नू**

प्रस्तावना–

सामाजिक न्याय से तात्पर्य है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को एक समान न्याय प्राप्त हो। अर्थात प्रत्येक व्यक्ति के साथ बिना किसी भेदभाव के एक समान व्यवहार किया जाना चाहिए। परंतु क्या यह संभव है? यदि हां तो बार–बार इस बिंदु पर शोध की आवश्यकता क्यों है? यदि नहीं तो सामाजिक न्याय को कैसे प्राप्त किया जा सकता है? अत्यंत प्राचीन काल से यह विशेष रुचिकर सामाजिक विषय रहा। वेदों में इस के दर्शन हमें देखने को मिलते हैं, **सर्वे भवंतु सुखिनः** के रूप में। देशकाल परिस्थिति के अनुसार इसके अर्थ बदलते गए। लोगों में स्वार्थपरता बढ़ती गई और यह भाव दुरूह होता गया परंतु इसका अंत नहीं हुआ क्योंकि सांस्कृतिक मूल्यों का पतन तो हो सकता है परंतु अंत नहीं। न्याय से तात्पर्य मात्र अन्याय की अनुपस्थिति नहीं अपितु समानता से है अर्थात किसी भी सभ्य समाज में जाति– विभेद, लिंग– विभेद, वर्ग–विभेद, वर्ण–विभेद, क्षेत्र–विभेद, भाषा–विभेद, की पूर्ण अनुपस्थिति का होना। जिस समाज में इस प्रकार के विभेदों की अनुपस्थिति जितनी अधिक होगी वह समाज सामाजिक दृष्टि से उतना ही न्याय पूर्ण होगा। महाकवि तुलसीदास जी ने अपने महान ग्रंथ रामचरितमानस में इसी प्रकार के न्यायिक समाज का वर्णन राम–राज्य के रुप में किया है।

सामाजिक न्याय के अंतर्गत राज्य के समस्त नागरिकों को बिना किसी विभेद के नागरिक अधिकार आर्थिक अधिकार राजनैतिक अधिकार, धार्मिक अधिकार साथ ही विभिन्न प्रकार की स्वतंत्रतायें यथा–वाक एवं अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, गरिमामयी जीवन जीने की स्वतंत्रता ,भोजन पाने की स्वतंत्रता ,स्वच्छ वातावरण में निवास करने की स्वतंत्रता, शिक्षा पाने की स्वतंत्रता, धार्मिक आचरण करने की स्वतंत्रता आदि राज्य द्वारा प्रदान की जातो हैं। जो राज्य अपने नागरिकों को उपरोक्त अधिकार एवं स्वतंत्रतायें अधिकाधिक रूप से प्राप्त कराते हैं उन राज्यों के नागरिक उतने ही अधिक सामाजिक रुप से न्याय प्रिय एवं नागरिक अधिकारों तथा मानव अधिकारों से ओत–प्रोत होते हैं। अतः यह स्पष्ट है कि व्यक्ति को नागरिक अधिकारों तथा मानव अधिकारों, कर्तव्यों ,न्याय आदि का ज्ञान तभी संभव है जब वह पूर्ण शिक्षित हो क्योंकि बिना शिक्षा के इस प्रकार का ज्ञान असंभव है ।अतः सामाजिक न्याय के प्रचार–प्रसार में शिक्षा महती भूमिका का निर्वहन कर सकती है।

सामाजिक न्याय–

सामाजिक न्याय को समझने से पूर्व यह समझना आवश्यक है कि न्याय क्या है? इस संबंध में प्राचीन यूरोप में **प्लेटो** एवं **अरस्त्** जैसे महान विचारकों ने इसकी व्याख्या करने की कोशिश की ,जैसे प्लेटो ने

कई व्यक्तियों से पूछा कि न्याय क्या है? अपनी पुस्तक रिपब्लिक का प्रारंभ वह इसी प्रश्न से करते ह जिसके उत्तर में कुछ विचारकों ने अपने –अपने विचार इस प्रकार दिए जैसे **सिफेलेस** के अनुसार, अपने भाषण और कार्य में सच्चा होना तथा देवताओं और मनुष्यों के प्रति अपने ऋण को चुकाना ही न्याय है। पॉलीमार्कस के अनुसार, न्याय प्रत्येक व्यक्ति को उसका उचित अधिकार देने में है। क्रांतिकारी या उग्रवादी सोफिस्ट विचारक **थ्रेसीमैकस** के अनुसार, **न्याय शक्तिशाली का हित है या शक्ति ही न्याय है।** व्यवहारवादी विचारक **ग्लॉकन** के अनुसार, **न्याय भय की संतान है या न्याय दुर्बल व्यक्तियों की आवश्यकता है।** अंत में **प्लेटो** न्याय की उच्च व्याख्या करते हैं, **अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करना और दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप न करना ही न्याय है अथवा प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य पालन में संलग्न रहे और दूसरों के किसी भी प्रकार के कार्यों में हस्तक्षेप न करे।**

उपरोक्त विद्वानों के द्वारा न्याय पर दिए गए अपने विचारों के आधार पर सामाजिक न्याय को समझना आवश्यक है ।अतः सामाजिक न्याय हेतु आवश्यक है कि समाज के विभिन्न अंग या वर्ग जैसे शासक ,प्रशासक, सैनिक ,उत्पादक, उपभोक्ता आदि सभी अपने–अपने लिए निर्धारित कार्यों को करते हुए समस्टि का निर्माण करें। अर्थात न्याय वह व्यवस्था है जो संपूर्ण समाज को एकताबद्ध रखता है इसके अंतर्गत समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता, क्षमता एवं कौशल के अनुसार अपना कार्य करता है। सामाजिक न्याय के अंतर्गत जब समाज का प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य भाव में पूर्ण रुप से संलग्न होगा तो उसे उसके नागरिक एवं मानवाधिकार स्वतः प्राप्त हो जाएंगे क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य पालन में व्यस्त होगा अर्थात वह किसी और के अधिकारों में अवरोध नहीं बनेगा। अतः ऐसी व्यवस्था को सामाजिक न्याय की व्यवस्था तथा ऐसे समाज को न्यायिक समाज कहा जाएगा । अतः हम यह कह सकते है कि स्वयं के कर्तव्यों को पूर्ण करते हुए सामाजिक एकता, अखंडता एवं सामंजस्य को स्थापित रखना ही सामाजिक न्याय है।

सामाजिक न्याय और शिक्षा की भूमिका–

जब तक राज्य मैं शिक्षा व्यवस्था को सुव्यवस्थित एवं सुनियोजित ढंग से प्रतिस्थापित नहीं किया जाएगा तब तक आदर्श एवं नैतिक राज्य, न्यायिक समाज की कल्पना मूर्त रूप धारण नहीं करेगी । शिक्षा की सामाजिक न्याय हेतु कितनी उपयोगिता है इसे निम्नलिखित विचारकों की कुछ पंक्तियों के आधार पर समझा जा सकता है, जैसे **प्लेटो** के शब्दों में, **शिक्षा ही राज्य के स्थायित्व एवं स्थिरता का आधार है।**

कानून के माध्यम से नागरिकों के चरित्र को समाज के अनुकूल बनाना सदा निरर्थक होता है यदि लोगों का चरित्र अच्छा है तो कानून अनावश्यक है और यदि चरित्र बुरा है तो कानून व्यर्थ है अर्थात चरित्र का निर्माण उस शिक्षा के माध्यम से ही हो सकता है जो जीवन क प्रारंभ में शुरू होती है और मस्तिष्क को परिपक्व बनाती हुई जीवनपर्यंत चलती है। **अरस्त्** के शब्दों में, **शिक्षा का उद्देश्य ऐसे श्रेष्ठ नागरिकों का निर्माण करना है जो परम विवेकशील हो और उसके माध्यम से राज्य संबंधी विषयों का चिंतन कर सकने की स्थिति में हो।**

अर्थात शिक्षा का प्रयोग राज्य व समाज द्वारा एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया के रूप में किया जाना चाहिए जिससे समाज का प्रत्येक घटक एक समान सामाजिक न्याय व चेतना से परिपूर्ण होकर समाज के प्रति अपने –अपने उत्तरदायित्वों का निर्वहन करना सीखें। अतः शिक्षा, सामाजिक क्षेत्र में सामाजिक न्याय ,नैतिकता ,सत्य, कर्तव्य– भाव, सहअस्तित्व, भाईचारा, दया, ईमानदारी, सदाचार जैसे उच्च मानवीय गुणों की अनुभूति का प्रेरणा स्रोत बन सकती है और यदि ऐसा संभव होता है तो सामाजिक न्याय की अवधारणा का वर्तमान परिप्रेक्ष्य में प्रदर्शन एवं अनुपालन सुनिश्चित हा सकेगा परंतु यह कार्य शिक्षा के माध्यम से ही संभव है। अतः हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान परिवेश में सामाजिक न्याय के क्षेत्र में शिक्षा महती भूमिका प्रदान कर सकती है ।

अध्यापक की भूमिका

अध्यापकों की भूमिका, दायित्व, जिम्मेदारी और कार्य आपस में जुडे फिर भी अलग–अलग सूक्ष्म अस्तित्व बनाएं हैं। अध्यापकों की निश्चित वेतन पर नियुक्ति होती है। जिस कार्य के लिए नियुक्ति की है उसको पूरा करना उनकी जिम्मेदारी होती है। अर्थात् वेतन के अनुरूप कार्य करते हुए वेतन को न्याय देना भी उसकी जिम्मेदारी कही जा सकती है। गुरु तथा अध्यापकों की लबी परंपरा और इतिहास दायित्वों की बात को स्पष्टता से रेखांकित करता है। अध्यापक के पास जो भी ज्ञान है वह छात्र के साथ समाज के लिए वितरित करना उसका दायित्व बनता है। बच्चों को पढाई के अलावा उसे सामाजिक जीवन से संबंधित ज्ञान की प्राप्ति करवाना तथा समाज में योगदान के लिए समर्थ बनाना अध्यापक का दायित्व है। उसका प्रस्तुत कार्य वेतन से कोई संबंध नहीं रखता है और वह अमूल्यवान भी है। अध्यापकों के वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, नैतिक, व्यावसायिक उत्तरदायित्व भी होते है। पढ़ना उनका कार्य है ही लेकिन बच्चें, युवा पीढी तथा समाज में उपयुक्त चीजों की सहायता से आदर्श एवं संस्कारों की निर्मिति करना भी उसी का काम है।

अध्यापकों का दायित्व कमरे में बैठ कर बच्चों को पढाना नहीं होता है। उसका दायित्व विद्यार्थियों का विकास करते हुए उनके सर्वांगीण व्यक्तित्व का निर्माण करना होता है। कल यहीं परिपूर्णता प्राप्त कर चुके बच्चें और युवक, समाज की आधारभूमि बनते हैं। अपने ज्ञान तथा बुद्धि का समाज और राष्ट्र विकास के लिए प्रयोग करते हैं, जिसमें संपूर्ण मानव जाति का विकास होता है। अध्यापकों के दायित्व विकास के लिए एक विशिष्ट वातावरण की निर्मिति करना जरूरी है। अर्थात् समाज द्वारा उसको विशेष सुविधा उपलब्ध करनी चाहिए। सबसे पहले समाज में अध्यापकों का मान–सम्मान तथा उन्हें प्रतिष्ठित बनाने की आवश्यकता है। कार्यक्षम और कुशल अध्यापकों की नियुक्ति कर उनकी कठिनाइयों को दूर करने और साधन–संपन्न बनाने की जरूरत है। इस प्रकार की स्थिति में अध्यापक की पारिवारिक और आर्थिक उलझने खत्म हो सकती हैं। अध्यापक भी एक मनुष्य है, अतः उसकी भी खामियां रहती हैं, उनको दूर करने के लिए उन्हें संस्कारित किया जाना चाहिए। प्रशिक्षण देकर नैतिक, सामाजिक, व्यवसायिक आदि संस्कारों से उसे कुशल बनाने की आवश्यकता होती है। समाज में अध्यापक की भूमिका अदा करनी हो तो नियमित रूप से आत्मपरीक्षण करते हुए आशावादी वृत्ति को तरोताजा रखने की आवश्यकता है।

संस्था–चालक और अध्यक्ष को भी ध्यान में रखना चाहिए कि यह सामूहिक कार्य है। अतः इस सामूहिक कार्य के लिए उचित परिवेश निर्माण करना और अध्यापकों को सहयोग देना उनका कर्तव्य है।

निष्कर्ष–

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं अध्यापक भी आम आदमी है। अतः सामान्य व्यक्ति की जो विशेषताएं हैं वहीं अध्यापकीय व्यक्तित्व में दिखाई पड़ती है परंतु कुछ ऐसी विशेषताएं है जो उसे सामान्यजन से पृथक करती है। संवेदनशीलता, आत्मीयता, परोपकारी वृत्ति, सहृदयता, ममतामयीता, परदुःखकातरता, मानवतावादी वृत्ति, सीधे–सच्चे, प्रतिष्ठित, सौहार्दता, दया–करुणा, सहानुभूति, संघर्षशीलता, दायित्व के प्रति सजगता, मार्गदर्शकता, प्रवीणता, दक्षता, सक्रियता, मूल्यांकनपरकता, परिवर्तनवादिता, विषय ज्ञान पर असाधारण प्रभुत्व आदि गुण अध्यापकों में होते हैं। शिक्षा के विभिन्न आयामों के द्वारा यदि व्यक्तियों को शिक्षित किया जाए तो निश्चित ही समाज में सामाजिक न्याय की अवधारणा को मूर्त रूप दिया जा सकता है ।जैसे नागरिकता की शिक्षा के द्वारा प्रत्येक नागरिक को उच्च गुणों से युक्त नागरिक होने का बोध यदि कराया जाये तो वह राष्ट्र के श्रेष्ठ नागरिक बन सकते हैं। मानवाधिकार शिक्षा के द्वारा यदि नागरिकों को विशेष रुप में शिक्षित किया जाये तो वह न केवल अपने मानवाधिकारों की रक्षा करेगें अपितु दूसरों के मानवाधिकारों को भी सम्मान देंगे। इसी प्रकार शिक्षा को यदि विभिन्न उपविषयों में बांट कर आज की युवा पीढ़ी को शिक्षित किया जाये तो निश्चित ही सामाजिक न्याय को अवधारणा चरितार्थ हो जायेगी। अतः हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान परिवेश में सामाजिक न्याय के क्षेत्र में शिक्षा महती भूमिका प्रदान कर सकती है ।

संदर्भ ग्रंथ –

महता, जीवन,(2005). राजनीतिक चिंतन का इतिहास, आगरा, संशोधित पुनर्मुद्रण, साहित्य भवन प्रकाशन

गाबा, ओम प्रकाश, (2005). समकालीन राजनीति सिद्धांत, नोएडा , संशोधित पुनर्मुद्रण, मयूर पेपर बैक्स प्रकाशन।

जैन ,पुखराज, (2001). नागरिक शास्त्र की रूपरेखा आगरा अट्ठाईसवां संस्करण ,साहित्य भवन प्रकाशन।

जैन पुखराज (2010). राजनीति विज्ञान, आगरा साहित्य भवन प्रकाशन।

मानवाधिकार आयोग, (2012). मानव अधिकार नई दिशाएं, नई दिल्ली वार्षिक अंक–2,मानवाधिकार भवन।

डॉ. ईश्वरदयाल गुप्त, आधुनिक भारतीय शिक्षा समस्या चिंतन, पृ 220